''आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की कविताओं की परिवर्तनवादी दृष्टि''

—डॉ. रवीन्द्र नाथ मिश्र

छायावादी विशेषताओं को आत्मसात् कर छायावादोत्तर काल में गीत लिखने वालों में जानकी वल्लभ शास्त्री का विशेष स्थान है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष पर छायावाद का प्रभाव होते हुए भी स्वातंत्र्योत्तर गीतकारों में इनकी विशिष्ट पहचान है। सौन्दर्य के प्रति नया दृष्टिकोण, अन्तरंग अनुभूतियों की सहजता, प्रणय के प्रति नूतन दृष्टि, सामाजिक और राजनैतिक चेतना और प्रकृति के प्रति प्रेम आदि इनके गीतों के अनुभूति-पक्ष हैं। शास्त्रीय संगीत के अच्छे ज्ञाता होने के कारण निराला के समान उनकी कविताएँ सरस एवं भाव प्रवण संवेदनाओं के साथ ही संगीतात्मक ताल-लय के सुन्दर समन्वय से पूर्ण हैं। शास्त्री जी के सम्बन्ध में श्री नलिन विवोचन शर्मा ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है 'प्रसाद निराला, पंत और महादेवी के बाद हिन्दी कविता की निर्झरिणी समतल भूमि पर प्रवाहित होने लगी और अनेक धाराओं में, इनमें से एक सदानीरा धारा ने तट-तरु का उच्छेद किए बिना अपने को उर्वर और स्निग्ध बनाया, दिशाओं को अपनी कल-ध्वनि से मुखरित किय, वह स्रोत से कभी विच्छिन्न भी नहीं हुई, इस धारा के भगीरथ आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री हैं।''

शास्त्री जी मधुर गीतकार हैं। विगत साठ वर्षों से प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता आदि के पड़ावों पर ठिठकती-ठहरती गीत की परम्परा निखरती और सँवरती गई। नवगीत के प्रायः सभी सर्जक और समीक्षक निरालाजी को गीतधारा के प्रवर्तक के रूप में गौरव प्रदान कर चुके हैं।.शास्त्री जी निराला की परम्परा की अगली कड़ी में आते हैं।

प्राप्त जानकारी के आधार पर शास्त्री जी के निम्नलिखित गीत-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'काकली','रूपअरूप' (1940), 'तीर-तरंग' (1944), 'शिप्रा' (1945), 'संजीवनी', 'मेघगीत' (1950), 'अवन्तिका' (1953), वासन्ती-पतझड़ 'संगम', 'बानलता', 'श्यामा संगीत' और 'धूपतरी' आदि।

गीतकार के रूप में शास्त्री जी का मूल्यांकन हम ऐसे गीतकार के रूप में कर सकते हैं, जो छायावाद तथा प्रगतिवाद के मध्य सेतु-बन्ध कहे जा सकते हैं। समय और समाज के अनुसार इनके गीतों का स्वर बदलता गया। नवगीत के सम्बन्ध में शास्त्री जी का मत है, '''नवगीत' जैसा कोई नाम न तो निराला जी ने दिया और न ही उनके किसी समकालीन अथवा उनकी धारा में लिखने वाले गीतकार ने दिया। जब 'नई कविता' और नई कहानी जैसे शब्द आधुनिक साहित्य में प्रचलित होने लगे, तब उनकी देखा-देखी गीत ने जो संवेदना और शिल्प को लेकर नये-नये प्रयोग किये वे ही 'नयागीत' अथवा 'नवगीत' के नाम से आगे चलकर प्रचार में आये।''

शास्त्रीजी की रचनाएँ पग-पग पर हमारे सामने उनकी प्रौढ़ तथा प्रांजल कवि-प्रतिभा का सुन्दर प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इनके गीतों में जीवन के स्वस्थ रागबोध, प्रकृति के सहज मनोरम चित्र और आध्यात्मिक विचार बड़ी लाक्षणिकता से व्यंजित हुए हैं। आधुनिक भौतिक परिवेश से पीड़ित मानवता के अनेक सूक्ष्म चित्रों का इनके गीतों में समावेश हुआ है।

यदि इनकी रचनाओं का मूल्यांकन करें तो 'काकली' स्वर-सन्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तो 'रूप अरूप' की कविताओं में कवि की अनुभूतियों के साथ-साथ उसका रूढ़ चिंतन और मूर्च्छना की दृष्टि परिलक्षित होती है। तीर-तरंग के 96 गीतों में मूलतः व्यक्तिगत आशा निराशा मूलक स्वर और मधुर गायन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ गीत युगजीवन से भी सम्बन्धित हैं। 'शिप्रा' गीत संग्रह में कुछ ऐतिहासिक विषय भी लिखे गये हैं। इस संग्रह की कविताओं में वैज्ञानिक युग की कठोर वास्तविकताओं के विरुद्ध भावुक प्रतिक्रिया लक्षित होती है। इस संग्रह के कुछ गीत गीतात्मकता की दृष्टि से बेजोड़ हैं। 'मेघगीत' में अनेक मनः स्थितियों में बादल के विविध रूपों को देखा गया है। इसमें गेयता के गुण विद्यमान हैं। 'अवंतिका' गीत-संग्रह में गीत और गीतेतर दोनों प्रकार के गीत हैं। कवि अपनी गीतात्मक संवेदना के साथ-साथ सामाजिक सत्यों की भी अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हुआ है। 'अवंतिका' कवि के व्यक्तित्व में निखार और प्रौढ़ काव्यत्व की ओर बढ़ते चरण का ठोस प्रमाण तो है ही, उनके गीतधर्मी व्यक्तित्व की गहरी रेखाओं को भी रेखांकित करती है।

हाल ही में प्रकाशित 'बानलता' गीत-संग्रह में तत्कालीन युग-संदर्भों को देखा जा सकता है। 'श्यामा संगीत' के गीतों में शास्त्री जी ने विषयवस्तु की दृष्टि से हिन्दी कविता को एक नयी दृष्टि देने का प्रयास किया है। 'धूपतरी' के गीतों के सम्बन्ध में शास्त्रीजी का विचार है—कि ''धूपतरी के गीतों में मैंने किस्म-किस्म के प्रयोग किये हैं। मेरी दृष्टि सदैव इस बात की ओर रही है कि मैं इसके सभी गीतों में अलग-अलग किस्म की छान्दसिक्ता को साधने में सफल हो सकूँ। किसी गीत में यदि नये-नये विशेषणों के माध्यम से आविष्कृत ताजेटटके बिम्बों को उकेरने का प्रयास किया गया है तो किसी गीत में वर्तमान जीवन की बहुविध विसंगतियों के बारे में मेरे स्वर के व्यंग्य बोधक रूप भी हैं।

शास्त्री जी के गीत-संग्रहों के संक्षिप्त परिचय के बाद मैं उनके गीत-संग्रह तीर-तरंग और 'मेघ-गीत' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहूँगा। इनके प्रारम्भिक गीत-संग्रह तीर-तरंग में प्रणय का स्वर प्रमुख रूप से विद्यमान है।

युवावस्था में कवि का भावुक मन प्रेम और सौन्दर्य के प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाता है। यही कारण है कि कवि अपने जीवन में प्रवेश करने वाली प्रेयसी के रूप गुण का वर्णन अत्यन्त रुचिपूर्वक करता है।

"और, तुम आईं तभी प्रतिध्वनि-सदृश साकार,
मलय-निलय समीर पर जैसे सुरभि-सागर
मुकुल में मुस्कान भरती, कुसुम में मकरन्द,
मधु-मधुर मकरन्द में भरती अमंद सुगन्ध॥"

शास्त्रीजी ने मानवीय सौन्दर्य के प्रति मनुष्य की सहज राग-भावना को बिना किसी झिझक के अभिव्यक्त किया है। छायावाद के दूसरे कवियों की अपेक्षा वे आत्माभिव्यक्ति को अधिक प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं। उन्होंने प्रेम और वियोग सम्बन्धी गीतों में एक ओर तो उन्मुक्त और मांसल सौन्दर्य को चित्रित किया तथा दूसरी ओर वैयक्तिक सुख-दुख, आशा-निराशा, मिलन-विरह इत्यादि नैसर्गिक चित्रों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। शास्त्री जी के प्रेम-परक भावों का स्वर प्राय: लौकिक धरातल पर ही गुंजित हुआ है। कवि का प्रेमी मन संसार की मर्यादाओं और संस्कारों के बन्धन को तोड़-फेंककर उन्मुक्त होना चाहता है—

"बनती आज आग कल, पानी
मेरी-तेरी प्रीति हो रही दिन-दिन छिन-छिन नई पुरानी।
पांवों में हैं पड़ी बेड़ियाँ, हाथों में हथकड़ियाँ,
लगी आग अन्तर में, आँखों में सावन की झड़ियाँ,
फिर भी छोड़ मुझे न भागते मेरे प्राण बड़े अभिमानी।"

प्रिय की उपेक्षा अथवा नासमझी के प्रति उपालम्भ के रूप में कवि ने जो अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं, वे बड़ी ही मार्मिकता के साथ व्यंजित हैं, प्रेयसी कवि के वियोगी हृदय का दु:ख समझने में असमर्थ है, किन्तु फिर भी कवि अपने दु:ख से उसका हृदय दुखाना नहीं चाहता—

"तू मेरा दुख जान न सकती सम्भव सुख के अनु समझले
समझ मगर दुख-गान न सकती।
क्यों फिर तेरा हृदय दुखाऊँ ? सोई है क्यों तुझे जगाऊँ,
लौट रहा कर मान, आज तू ,मेरा कर सम्मान न सकती।"

जहाँ शास्त्री जी ने वियोग प्रधान गीत लिखे हैं, वहीं संयोग प्रधान गीतों में भी सफलता प्राप्त की है।

शास्त्रीजी के गीतों केस्वर युगबोध के अनुसार बदलता गया। नारी प्रणय के बाद प्रकृति और उसके बाद देश एवं समाज के प्रति उनका प्रेम प्रतिबद्ध हो गया। प्रणय के विविध रूप इनके गीतों में मिलते हैं। प्रकृति के प्रति उनके मन में कोमल और मधुर भाव थे। विराट् सौन्दर्य का चित्रण वे नहीं करते। वर्षाकालीन मेघों के जो भी सुन्दर और रमणीय चित्र निरुपित किए गए हैं, वे उनके 'मेघगीत' काव्य-संग्रहों में सहज ही देखने को मिलते हैं।

"बदलती छवि वेश,
नव निमेष-निमेष।
विश्व-प्राण-प्रकाश-वासिनी,
काश विकल विकास हासिनी,
शरद सुंदरि, शुचि विलासिनि,
सफल दृग-अनिमेष।
सजग जगत् अशेष।"

शास्त्री जी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत अधिकांश रूप से आत्माभिव्यक्ति शैली को अपनाया है। उनके गीतों में जीवन सम्बन्धी राग-विराग, आनन्द-पुलक, आशा-निराशा और संघर्ष-विषाद की निष्कपट अभिव्यक्ति हुई है। उनके आत्मपदक गीतों के अन्तर्गत एक कलाकारी मिलती है। आभिजात्य समाज के भय से कवि अलग, अकेला, असाहय, अकिंचन और लुटा हुआ-सा है, उसका मन सूना है और आँखें डबडबाई हुई हैं।

निरालाजी की दर्शन और चिन्तन परम्परा को शास्त्री जी ने भरपूर निभाया है, किन्तु शास्त्री जी के काव्य में बौद्धिक जटिलता नहीं है, साथ ही उनमें उच्चकोटि का दार्शनिक चिन्तन भी प्राप्त नहीं होता। शास्त्री जी की कुछ कविताएँ छायावादी रहस्यात्मकता से प्रभावित हैं।

"सोचता हूँ सांझ हो जाती पहुँचते सिन्धु तट तक,
क्या कभी भी पहुँच पाऊँगा न मैं तेरे निकट तक।"
"लहर कर से कौन इंगित कर बुलाता है भँवर में,
हाय मैं अब तक उगर में।"

कहना न होगा कि शास्त्रीजी की कविताओं में वह आध्यात्मिक भावना नहीं है जो कि छायावादी कवियों में पायी जाती है। प्रारम्भिक कविताओं में इसका स्वर कहीं-कहीं मिलता है—

"गति है तो जीवन है, मुझे रोक कर रखो नहीं,
मेरा अमूल्य छन-छन है।"

निराला की भाँति शास्त्रीजी को भी बादलों से काफी अनुराग है। वैसे तो प्रकृति के विभिन्न रूपों में उनकी अभिरुचि है, लेकिन बादलों के विविध रूपों का जो वर्णन किया है, वह अपने आप में अनूठा है।

''मेघ रन्ध्र में मन्द्र-सान्द्रध्वनि, दृम-छम दृम उन्मद मृदंग की
भाद्र समुद्र रूद्र रव रसना, नाच रही कस-दस दिशि वसना,
उमड़-उमड़ घन घेर घेर, अंबर भर छायेरी
परदेशी घनश्याम आज, अंबर में आयेरी।''

शास्त्रीजी के गीतों में प्रकृति के स्वरूप कहीं-कहीं अपनी सूक्ष्म अभिव्यंजना, सुन्दर कल्पना और गहन अनुभूति के साथ व्यक्त हुए हैं। प्रेम और सौन्दर्य के चितेरे के रूप में इनको विशेष ख्याति मिली है। इसके कारण छायावाद का प्रगतिशील स्वर कम ही दिखलाई पड़ता है।

समकालीन कविता के दौरान लिखी गई रचनाओं में यथार्थवाद का स्वर प्रधान है। इसमें नवीन सौन्दर्य बोध की उद्भावना मिलती है। शिल्प के स्तर पर भी बदलाव आया है। युग के प्रभाव से शास्त्री जी वंचित नहीं रहे हैं फिर भी भौतिकता के विरोधी रहे हैं। अपने समकालीन गीतकारों में शास्त्रीजी को वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर और माहेश्वर तिवारी, कुमार रवीन्द्र, राजेन्द्र गौतम और योगेन्द्र दत्त के गीत विशेष प्रिय लगे हैं।

जहाँ तक शिल्पगत वैशिष्ट्य का सवाल है, भाषा, छन्द और शैली की दृष्टि से उनमें पर्याप्त नवीनता होने पर भी नूतन-भाव सृष्टि का अभाव है। पुरातन पद्धति के छायावादी भाव बोध के गीतकार होने के कारण उनके कृतित्व में अनुभूतियों के साथ प्रणय की भी मार्मिक-व्यंजना हुई है। अभिव्यक्ति की सहज स्वाभाविकता और संगीत की मधुरता के कारण इनके गीत काफी प्रभावी लगते हैं। संस्कृत, साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान होने के कारण भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का उपयोग बड़ी सुन्दरता से हुआ है। इनके प्रतीकों और अलंकारों का विधान उच्च कोटि के छायावादी कवियों के ही स्तर का है। आधुनिक जीवन-बोध की विकसित परिधि में छायावादी रचनाएँ अब उतनी ताजगी नहीं लिए हुए हैं। लोकधुनों पर आधारित इनके कुछ गीत अधिक सराहनीय हैं। शास्त्रीजी का प्रकृति-चित्रण आलम्बन उद्दीपन और मानवीकरण तीनों रूपों को लेकर चला है। इनके गीतों में भावों की स्वच्छता, कोमलता और सूक्ष्मता है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि जानकी वल्लभ शास्त्री छायावादी शैली के एक उत्कृष्ट कवि हैं।

गीति-क्षेत्र में उनकी महत्तम और एक मात्र उपलब्धि शास्त्रीय-संगीत की देन है। असाधारण कवि-व्यक्तित्व और गीतकार होने के कारण हिन्दी गीति-क्षेत्र में शास्त्रीजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छायावादोत्तर काल में शास्त्री जी उन गिने चुने गीतकारों में हैं जो कि छायावादी विशेषताओं को आत्म-सात् कर पर्याप्त लोकप्रिय और सम्मान के अधिकारी बन गए। इनके गीतों में वह धड़कन है जो कि हमारे मन और मस्तिष्क को झकझोर कर रख देता है।

अब मैं नवगीत के सम्बन्ध में शास्त्रीजी के विचारों को रखते हुए अपनी बात समाप्त करूँगा। उनका कहना है, ''साहित्य अभी भी वृहत्तर जन-जीवन से जुड़ा है। साहित्य को यांत्रिक सभ्यता इतनी आसानी से नहीं निगल पायेगी। नवगीत तब तक जियेगा जब तक गीत जीवित रहेगा। जो लोग शोर-शराबे से अलग रहकर आज लेखन की साधना में लीन हैं उनकी अधिक समय तक उपेक्षा नहीं की जा सकेगी। दुर्भाग्य की बात है कि आज़ नवगीत के रचना संसार में भी पुरोहित पाण्डे आसन जमाकर बैठ गये हैं। उनके हाथों में तरह-तरह के डण्डे और झण्डे भी दिखाई दे रहे हैं, किन्तु एक दिन आएगा जब इतिहास के प्रवाह में वे सब बह जायेंगे। नवगीत तब भी बचा रहेगा, क्योंकि उसकी जड़ें परम्परा के पाताल तक पसरी हुई हैं। आन्दोलनों, प्रदर्शनों और अधिवेशनों से बचाकर समर्पित साधकों को अपने हाथों नवगीत के मुक्ति का मार्ग खोजना पड़ेगा।''

अन्ततः हम कह सकते हैं कि आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री की कविताओं का स्वर युग विशेष के सन्दर्भ में बदलता गया परन्तु वे अपनी जमीन से जुड़े रहे। बिखरते हुए मानवीय मूल्यों, भौतिकता की अतृप्ति व्यास और कुंठा ग्रसित जीवन में भी उन्होंने अपने को आचार-विचारों के स्तर पर काफी संयत बनाये रखा। उनकी यह सादगी उनके गीतों में भी मुखरित हुई है। आज के युग में ऐसे गीतकारों की आवश्यकता है जो कि अपने गीतों से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान कर सकें।

संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास- चतुर्दश भाग
   काशी नागरी प्रचारिणी सभा
2. आधुनिक कवि और उनका काव्य
3. छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य डॉ सुरेश गौतम
4. छायावादोत्तर हिन्दी कविता डॉ. रमाकान्त शर्मा
5. नवगीत-इतिहास और उपलब्धि डॉ सुरेश गौतम
   डॉ. श्रीमती वीणा गौतम
6. मासिक पत्रिका 'आजकल' जनवरी 1988

हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403205